महाकाव्य का आखिरी नायक

देवेन्द्र

महाकाव्य का आखिरी नायक

देवेंद्र

न्यूयार्क में होने वाले डॉक्टरों के सेमिनार के लिए भास्कर राव का पेपर स्वीकृत कर लिया गया था। सेमिनार बोर्ड की ओर से उनके पास इस आशय का एक पत्र भेजा गया था - "निश्चित ही भारत के अलावा अन्य देशों को भी आपके इस काम से बहुत ज्यादा मदद मिलेगी।" इसके बाद सेमिनार में सम्मिलित होने के लिए कुछ निर्देश दिए गए थे।

टाइप किए हुए इस छोटे से पत्र को भास्कर राव ने उलट-पुलट कर बीसियों बार पढ़ा। उस दिन आए हुए मरीजों को उन्होंने इत्मीनान से देखा और किसी न किसी बहाने यह जरूर बताया कि उन्हें न्यूयार्क बुलाया गया है।

क्लीनिक के ऊपर ही उनका आवास था। दोपहर तक मरीजों को निबटा कर उन्होंने ऊपर जाकर कपड़े बदले और इत्मीनान से खड़े होकर सड़क की ओर देखने लगे। वहाँ एक पागल धूप में खड़ा होकर सूरज को ललकार रहा था। मुहल्ले के मैले-कुचैले लड़के पीछे से हो-हो करते हुए ढेला फेंक रहे थे। चाय की दुकान के सामने बेंच पर बैठे हुए दो कांस्टेबुल अपनी रायफलों पर ठुड्डी टिकाए धीरे-धीरे हँस रहे थे।

टहलते हुए भास्कर राव मेज के पास गए और पत्नी की चिट्ठी को दुबारा पढ़ने लगे। नीचे लॉन में माली करीने से पौधों की कटाई कर रहा था। कमरे और बालकनी के बीच टहलते हुए वे सिर्फ न्यूयार्क के बारे में सोच रहे थे। उनके चेहरे पर हल्की मुस्कराहट और आँखों में दुनिया को समझने की गंभीरता चमक रही थी। खिड़की और दरवाजे से आ रही हवा उन्हें स्फूर्ति और ताजगी से भरी हुई लग रही थी। रोशनदान पर बैठा हुआ एक कबूतर अपनी मादा के पंखों में सिर छुपा कर खेल रहा था। उम्र के इस मुकाम पर पहली बार दुनिया उनके सामने पवित्र आस्था की तरह शांत भाव से गतिमान हो रही थी। उन्होंने आदमी के दायित्वों के बारे में सोचा और धीरे से बुदबुदाए - "कठोर परिश्रम उन्नति का मूलमंत्र है।" इन समूची कोमल और शांत मनःस्थितियों के बीच उस समय अचानक खलल पड़ा, जब नीचे गेट पर खड़ा दरबान जोर-जोर से किसी को गाली देने लगा।

रोज के मुताबिक यह भास्कर राव के सोने का समय था। अक्सर इस समय आए हुए मरीजों को दरबान गालियाँ देता और धक्के मारकर भगा दिया करता है। लेकिन आज भास्कर राव न तो सोए हुए थे और न ही उनके भीतर काम के थकान की कोई झुंझलाहट थी। दरबान की आवाज सुनकर वे बालकनी की ओर चले आए। उन्होंने

देखा कि एक मैली-कुचैली गंदी सी औरत अपनी गोद में बच्चा लिए दरबान के पैर पकड़कर गिड़गिड़ा रही है। एक निरीह और सहमा हुआ सा आदमी हाथों में गठरी पकड़े चुपचाप पीछे खड़ा है। दरबान बेरहमी से धकेलते हुए उन दोनों को गालियाँ दे रहा है। भास्कर राव ने दरबान को रोककर उन दोनों को क्लीनिक में बैठने के लिए कहा और खुद नीचे चले आए।

यह औरत दो महीने पहले अपनी आँख दिखाने आई थी। भास्कर राव ने उसी समय बता दिया था कि तुरंत ऑपरेशन करा लो वरना आँख खराब हो सकती है। जब इस समय उन्होंने जाँच की तो पता चला कि एक आँख पूरी तरह खराब हो चुकी है और अब दूसरी को भी बचा पाना मुश्किल है। उन्होंने झुँझलाते हुए लापरवाही बरतने के लिए उसके पति को डाँटा।

पति गिड़गिड़ाने लगा - "साहब, पैसा नहीं था। एक आदमी से उधार लेकर आज आ रहा हूँ। आप तो भगवान हैं साहब, कोशिश कीजिए।"

जब वे दोनों जा रहे थे तो भास्कर राव ने देखा कि सिसकती हुई औरत अपनी साड़ी के पल्लू से आँखों को पोंछ रही है। असहायता और विश्वास से भरा हुआ उसका पति लौटना नहीं चाहता था। औरत ने समझाया - "अब चलो! जो कुछ तकदीर में बदा है वह तो भोगना ही पड़ेगा।" उसकी गोद में चिपका बच्चा लॉन में खिले फूलों को देखकर मचल रहा था। यह सारा कुछ भास्कर राव को इतना कारुणिक लगा कि वे भीतर तक काँप गए। और जैसे कि विराट समुद्र के अखंड स्थैर्य को तोड़ता कँपाता एक द्वीप उभर आए। जीवन के चहल-पहल से भरा द्वीप अपने हाथ उठाकर सोने की सभ्यताओं से लदी नौकाओं पर बैठे सौदागरों को अपनी ओर बुलाने लगा। वहाँ खपरैलों के घर थे। गोबर से पुता आँगन था। घास चरती भैंसे थीं। गाँव के प्राइमरी स्कूल में मास्टर और किसान पिता की छाया में पटरी पचरता, ककहरा रटता बचपन था।

एक दिन पिताजी ने घर की इकलौती दूध देने वाली भैंस को बेच दिया। जो कुछ भी पैसा मिला उससे माँ का इलाज कराने के लिए वे शहर के डॉक्टर के पास गए। घर में बूढ़ी दादी और भास्कर राव की बड़ी बहन थी। माँ को गए कई दिन बीत गए थे। एक साँझ स्कूल से लौटने के बाद बालक भास्कर घर की छत पर अकेला बैठा

उदास पड़ा-पड़ा रो रहा था। उसी दिन पिताजी आए थे। माँ साथ नहीं थी। दूसरे दिन भास्कर भी पिताजी के साथ शहर गया।

बस से उतर कर जब वे शहर में घुसे तो शाम हो रही थी। खंभों पर बिजली के बल्ब जल रहे थे। दुकानों में जल रही ट्यूबलाइटों का दूधिया प्रकाश बाहर तक फैल रहा था। हजारों लोग आ रहे थे। जा रहे थे। रिक्शे थे। मोटर गाड़ियाँ थीं। एक जगह सड़क पर तीन-चार गायें निश्चिंत भाव से खड़ी थीं। मोटरें तेज हार्न देती हुई उन्हें दरेर कर निकल जातीं। किताबों में छपे ट्रैफिक पुलिस वाले को सामने सड़क के चौराहे पर देखकर भास्कर को अजीब सा कौतूहल हुआ। उसने पिताजी से पूछा - "ये गायें किसकी हैं? और ये मोटर गाड़ियों को देखकर क्यों नहीं चिहुँक कर भाग रही हैं?" पिताजी ने बताया - "शहर के आदमियों की तरह यहाँ की गाय-भैंसे भी समझदार होती हैं?" पिताजी की उँगली पकड़े भास्कर सब कुछ अचरज से देखता हुआ सोच रहा था कि इन साफ, चमकती सड़कों पर चलने वाले लोग कितने खुश हैं। पिताजी ने एक दुकान से माँ के लिए केले और संतरे खरीदे। उसमें से दो संतरे खाने के बाद भास्कर ने उसके छिलके अपनी पैंट की जेब में रख लिए थे। सड़क के किनारे एक सफेद और खूब चिकनी जगह पर पिताजी ने पेशाब करने के लिए खड़ा कर दिया था। वहाँ अगल-बगल कई लोग थे। शर्म के मारे या कि क्या था भास्कर को पेशाब ही नहीं हुई। इस तरह घूमते टहलते वे सरकारी अस्पताल तक पहुँचे।

वहाँ कंपाउंड में चारों तरफ धुआँ उठ रहा था। मरीजों के साथ गाँव से आए हुए लोग उपलों या स्टोव पर चावल और आलू उबाल रहे थे। माँ की आँखों में मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ था। अस्पताल के बरामदे में और पिछवाड़े ढेर सारे आदमी और औरतें आँखों पर कोल्हू के बैल की तरह गोल और सख्त पट्टियाँ बाँधे गठरी की तरह चुपचाप पड़े हुए थे। भास्कर ने निर्जीव गठरी की तरह कोने में पड़ी माँ और उनकी आँखों पर बँधी नीली पट्टी को देखा। कई दिनों बाद इस हॉल में माँ से मिलने की आह! अचानक तेज हिचकियों के बीच बालक मन की करुणा फूट पड़ी। माँ ने बेटे को सीने से चिपका लिया और हाथों के अंदाज से गालों को सहलाते हुए आँसू पोंछने लगी थी।